अन्तर्वेदना

—पुरुषार्थवती

विश्व साहित्य ग्रन्थमाला
(कविता विभाग का दूसरा ग्रन्थ)

अन्तर्वेदना

लेखिका—

पुरुषार्थवती

प्रथमावृत्ति } अगस्त { मूल्य १)

प्रकाशक—
विश्व साहित्य ग्रन्थमाला
मैक्लेगन रोड,
लाहौर ।

मुद्रक—
पं० भीमसेन विद्यालङ्कार
नवयुग प्रिंटिङ्ग प्रैस,
लाहौर ।

श्रीमती पुरुषार्थवती

(दिल्ली—१९११ से १९३० तक)

भेंट

सिमटते ही सूना उल्लास
हृदय में तड़प उठा विश्वास,
अतिथि! क्या दे सकती हूँ भेंट ?
यही 'दो' अश्रु भरे निश्वास !

वक्तव्य

एक कली थी, जो खिलनी शुरु हुई ही थी कि तोड़ ली गई। अगर वह पूरी तरह खिलने पाती, तो कितनी सुन्दर और कितनी सुवासित होती—यह कौन कह सकता है!—इस की विवेचना करने से लाभ भी क्या है? जगन्नियन्ता की इच्छा अवश्य पूरी होनी चाहिए,—जगन्नियन्ता की इच्छा अवश्य पूरी होती है और जब वह कली खिलते-खिलते टूट गई, तब भी अवश्य ही जगन्नियन्ता की इच्छा पूरी हुई! अध-खिली कलियां उस का पवित्रतम अर्घ्य हैं, बन्द कलियों से उसे बहुत अधिक प्यार है!—शायद यही कारण है कि वह होनहार कली जब खिलनी शुरु हुई तो उसी समय विधाता ने उसे तोड़ लिया।

उसी कली के पराग के कुछ रेणु इस संग्रह द्वारा हिन्दी संसार की भेंट किए जा रहे हैं। उस अधखिली कली का यह पराग देवता के नैवेद्य के समान पवित्र है।

समालोचकों से मेरा साग्रह अनुरोध है कि वे इस संग्रह को एक नए दृष्टिकोण से परखने का प्रयत्न करें। उस प्रतिभाशालिनी बाला-कवियित्री ने यह संग्रह स्वयं प्रकाशित नहीं करवाया। अगर वह स्वयं इसे प्रकाशित करातीं, तो निश्चय ही इसमें उन्हों ने बीसों परिवर्तन किए होते, जो अब नहीं किए जा सकते। अपने एक मित्र की

सहायता से मैंने इस संग्रह का सम्पादन किया है। मैं स्वयं न तो कवि हूँ और न छन्द शास्त्र की ज्ञाता ही हूँ, तथापि मेरी यह धारणा है कि इस संग्रह के पद्यों में छन्द-सम्बन्धी अनेक त्रुटियाँ खोज निकाली जा सकती हैं। इस संग्रह की कुछ कविताओं को 'अस्पष्ट' भी कहा जा सकता है और किसी-किसी भाव के सम्बन्ध में यह भी कहा जा सकता है कि लेखिका का यह भाव मौलिक नहीं है। ये सब बातें ठीक हो सकती हैं, परन्तु इन सबके बावजूद भी जब समालोचक महोदय इन दो 'ठीक' बातों की तरफ़ ध्यान देंगे तो अवश्य ही उनका दृष्टि-कोण बदल जायगा। पहली बात तो यह कि ये कविताएँ लेखिका ने अपनी सोलह बरस से लेकर उन्नीस बरस की आयु तक ही लिखी हैं। जब वह उन्नीस बरस और ४ मास की थीं—तभी जगन्माता ने उन्हें अपनी गोद में वापस बुला लिया। दूसरी बात यह है कि यह संग्रह को लेखिका ने स्वयं प्रकाशित नहीं करवाया। यदि वह इसे स्वयं अपनी देखरेख में छपवातीं, तो अवश्य ही इसकी अनेक त्रुटियों को दूर कर सकतीं।

श्रीमती पुरुषार्थवती का जन्म ८ अक्तूबर १९११ के दिन हुआ था और उन का अवसान ११ फरवरी १९३१ के दिन हुआ। २४ अगस्त १९३० के दिन उन्होंने द्वितीयाश्रम में प्रवेश किया था। इस संग्रह की समस्त कविताएँ, सिर्फ़ "वंशी की तान" शीर्षक कविता को छोड़ कर, उन्होंने कुमारी-अवस्था में ही लिखी थीं। सोलह या अठारह बरस की उम्र होती ही कितनी

है ! इतनी उम्र में ऐसी भावपूर्ण कविता करना उनकी असाधारण प्रतिभा को व्यक्त करता है। और यही कारण है कि जो लोग एक वार भी उन के सम्पर्क में आए, वे उन से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके।

इस संग्रह की कविताओं के प्रवाह के सम्बन्ध में एक बात कह कर मैं इस वक्तव्य को समाप्त करूँगा। इन कविताओं को मैं ने अपने एक कवि मित्र को दिखाया था। उन्हों ने इन के सम्बन्ध में कहा था—" इन कविताओं की लेखिका के हृदय में तो बहुत कुछ है, परन्तु हृदय के उन भावों का प्रकाशन उस अनुपात में नहीं हो सका। इस का परिणाम यह हुआ है कि इन कविताओं में विवक्षा का भाव बहुत अधिक आ गया है। एक दृष्टि से इस तथ्य ने उस बाला-कवियित्री की कविताओं की क़ीमत और भी अधिक बढ़ा दी है।"

मेरी अपनी राय में भी इन कविताओं में विवक्षा के भाव की ही प्रधानता हैं। प्रत्येक कवि की प्रारम्भिक दशा में स्वभावतः इसी बात की प्रधानता रहती है। कवि जब पहले-पहल इस सुन्दर, अद्भुत और वीभत्स संसार को विस्मय तथा कौतुहल से भरे अन्तःकरण के साथ देखता है, तो उसका हृदय विवक्षा के भावों से परिपूर्ण हुए बिना नहीं रह सकता। वह भगवान की इस विचित्र सृष्टि को चकित होकर देखता है, वह समझ नहीं पाता कि यह सब क्या तमाशा है। इस भौतिक सृष्टि के सुन्दर पर्वत, स्वच्छ झरने, विस्तृत मैदान , घने जंगल, चम-

कीले रेगिस्तान और महासमुद्रों की सीमारहित जल-राशियां, ये सब कवि के हृदय को एक अद्भुत प्रकार की अनुभूति से भर देते हैं—कवि स्वयं भी नहीं समझ पाता कि उसके हृदय की यह अनुभूति क्या है ! शुरू-शुरू में इस अनुभूति का उसके मस्तिष्क पर जो असर पड़ता है, वह इतना ही कि उसका अन्तःकरण जिज्ञासा और विवक्षा के भावों से परिपूर्ण हो जाता है । क्रमशः आगे-आगे बढ़ कर, कवि की दृष्टि अन्तर्मुखी होती जाती है और इस अन्तर्मुखी दृष्टि के द्वारा वह प्रकृति को भी समझने लगता है, तब यह प्रकृति उसे अपने से बहुत दूर की चीज़ नहीं प्रतीत होती । इस दशा में वह जो रचनाएँ करता है, वे 'प्रकृति का वस्तविक और जीवित संगीत' होती है । महाकवि इस दशा से बढ़ कर क्रमशः एक तीसरी मंज़िल पर जा पहुँचते हैं । वह मंज़िल, जो आत्मबोध की मंज़िल है । वहां पहुँच कर कवि केवल इस भौतिक प्रकृति का राग ही नहीं सुनता, वह उस महान शक्ति के साथ जा मिलता है, जो शक्ति इस जगत का संचालन करती है । उसे आत्मबोध हो जाता है और उपनिषद् के शब्दों में इस आत्मबोध द्वारा ज्ञानी को 'निश्रेयस सिद्धि' होजाती है ।

इस संग्रह की कवियित्री अभी कवियों की प्रथम सीढ़ी पर थीं । पाठक देखेंगे कि उन के हृदय की विवक्षा कितनी विशुद्ध और उच्च है ।

उस बाला कवियित्री की अनेक रचनाएँ ऐसी भी हैं,

जो आसानी से समझ नहीं आती–कुछ अंश तक अस्पष्ट हैं। ऐसी रचनाएँ, जहां तक मुझ से बन पड़ा है, मैंने इस संग्रह में नहीं दीं। आजकल छायावाद और रहस्यवाद को लेकर हिन्दी कविता के जगह में ख़ासा मतभेद खड़ा हो गया है। इस सम्बन्ध में मैं अधिकार के साथ कुछ भी नहीं कह सकता, क्यों कि मैं स्वयं कवि नहीं हूँ। तथापि इस संग्रह में जिस अंश तक छायावाद का समावेश हुआ है, उस के सम्बन्ध में मुझे कुछ न कुछ वक्तव्य अवश्य है। अन्धकार और प्रकाश के सम्मिश्रण का नाम छाया है, अथवा यों कहना चाहिए कि अधूरे प्रकाश का नाम छाया है—जिस में दिखाई तो देता है, मगर स्पष्टता के साथ नहीं। प्रकाश का यही अधूरापन, दृश्य का यही धुँधलापन रहस्य की सृष्टि करता है। जिस तरह दोपहर के उजले प्रकाश में, जिस में सभी कुछ नग्न-सा होकर दिखाई देता है, सुन्दर से सुन्दर दृश्य भी तीव्र और ठोस-से दिखाई देने लगते हैं, और जिस तरह सांझ के असम्पूर्ण-अन्धकार ('असम्पूर्ण अन्धकार' इस लिए कि उसमें प्रकाश का अंश बहुत कम होता है) में मरुभूमि भी सुहावनी प्रतीत होने लगती है–उसी तरह मानव-हृदय के अनेक भाव इस तरह के हैं, जो कुछ अस्पष्ट रह कर ही अधिक कवितामय और अधिक रोचक बनते हैं।

मुझे मालूम है कि रहस्यवाद केवल यहीं तक सीमित नहीं। वह इस से भी अधिक व्यापक और ऊंची चीज़ है, मगर मैं तो जानबूझ कर उस का वही रूप ले रहा हूँ, जिस में वह

'अस्पष्ट' और 'धुँधला' रहता है। मान लीजिए, एक कवि के हृदय में एक भाव उठा; उस कवि के अन्तःकरण को उस भाव की अनुभूति तो होती है, मगर वह स्वयं भी उसे भली प्रकार समझ नहीं पाता (यानी उस का मस्तिष्क २+२=४ के ठोस वैज्ञानिक तर्क के ढंग से उस भाव का बौद्धिक-चर्वण भली प्रकार नहीं कर सकता)। तथापि, जो कुछ वह अनुभव करता है, उसे अधूरी भाषा में प्रकट कर देता है। वह चीज़ प्रकाशित क्यों न की जाय ?—यह मुझे समझ नहीं आता। जो लोग उस 'अस्पष्ट भाव' से इतनी घृणा करते हैं कि उसे प्रकाशित हुआ भी नहीं देखना चाहते, उनसे मैं पूछता हूँ कि क्या वे किसी व्यक्ति, घटना अथवा दृश्य का छाया-चित्र (Caricature) देखना पसन्द नहीं करते ? आप उसे पसन्द नहीं करते; यह तो समझ में आया। परन्तु आप इस बात का दावा कैसे भरते हैं कि वह अस्पष्ट भाव किसी भी अन्य व्यक्ति के हृदय में रसका प्रवाह नहीं कर सकता। यह पूरी तरह मुमकिन है कि धुंधले रूप में व्यक्त किया हुआ हृदय का वही भाव किसी अन्य भावुक हृदय में भावों की लहर उत्पन्न कर दे। अपूर्णता, मिथ्या, भ्रान्ति और अस्पष्टता ही इस भौतिक सृष्टि के सब से बड़े आधार स्तम्भ हैं। सत्य विज्ञान है और छाया (मायासे आवृत सत्य) कविता है। उपनिषद् के शब्दों में यह जगत 'विद्या' और 'अविद्या' दोनों पर आश्रित है। मेरी राय में इसी 'अविद्या' से जिसकी प्रवृत्ति

'विद्या' की ओर है, रहस्यवाद की उत्पत्ति होती है।

इस सब विवेचना से मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं कि बिलकुल बेमतलब की, बेसिर-पैर की और बेतुकी बातों को छायावाद की आड़ में बड़े आदर के साथ पालापोसा जाय। हृदय की गहरी अनुभूति से ही छायावाद की कविता उत्पन्न हो सकती है। जिस तरह किसी वस्तु का चित्र बनाना ज्यामितिके कोण और वृत्त बनानेकी अपेक्षा कहीं अधिक कठिन और निपुणता का कार्य है, उसी तरह छन्दशास्त्र के आधार पर प्रचलित उपमाएँ, तुक आदि एकत्र कर दोहे और सोरठों की झड़ी लगा देने की अपेक्षा हृदय से निकली हुई कविता बहुत उत्कृष्ट वस्तु है, चाहे वह कृति उतनी स्पष्ट भी क्यों न हो। परन्तु शोक इसी बात का है कि दुर्भाग्य से हमारे साहित्य में छायावाद के नाम पर जिस कविता की सृष्टि की जा रही हैं, वह बहुत सस्ती चीज़ है। मेरा ख्याल है कि हिन्दी जगत में छायावाद की बदनामी का बड़ा कारण यही तथ्य है। अस्तु; इस अनधिकारपूर्ण चरचा के लिए मैं पाठकों से क्षमा चाहता हूँ।

मुझे विश्वास है कि उस बाला-कवियित्री की यह "अन्तर्वेदना" रसज्ञ पाठकों के हृदय में एक गहरी कसक उठाए बिना न रहेगी।

लाहौर
८ अगस्त १९३३

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

परिचय

हिन्दी साहित्य और हिन्दी कविता के लिए यह एक अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है कि एक उदीयमान बाला-कवियित्री का स्वर्गवास हो गया है। एक अधखिली कली अपना सौन्दर्य और सुरभि प्रकट किए बिना ही मुरझा गई !

हिन्दी कविता के जगत में कुमारी पुरुषार्थवती का नाम कोई अज्ञात नाम नहीं है। यह सच है कि वह अभी तक बहुत अधिक ख्याति प्राप्त नहीं कर सकी थीं। परन्तु इस 'होनहार बिरवा' के सम्बन्ध में कवि-समाज में पर्याप्त दिलचस्पी उत्पन्न हो चुकी थी। और लोगों को उमीद थी कि यह कुमारी एक दिन हिन्दी साहित्य का मुंह उज्ज्वल करेगी।

पुरुषार्थवती जी अब कुमारी नहीं रही थी। कुछ ही समय पूर्व उन का विवाह श्रीयुत चन्द्रगुप्त विद्यालंकार से हुआ था। आशा थी कि इस 'साहित्यिक युगल' द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी की अनुपम सेवा होगी। सन् १९३० के अगस्त मास में काश्मीर की सुमनोहर घाटी में, जब इन दोनों साहित्यिकों,—कहानी लेखक और कवियित्री—का विवाह धूम-धाम के साथ हो रहा था, तब बहुत से साहित्य सेवी वहां एकत्र हुए थे। सब एक स्वर से यही कह रहे थे कि यह जोड़ी किसी दिन हिन्दी संसार का मुख उज्ज्वल करेगी। परन्तु प्रारम्भिक-निशीथ

की उस शान्त वेला में आसमान के तारों के पीछे छिपा हुआ दैव मुसकरा कर कह रहा था कि यह गठ-बन्धन छः मास से ज्यादा के लिए नहीं है !

कहते हैं, जो लोग देवताओं को बहुत प्यारे होते हैं, उन्हें वे शीघ्र अपने पास बुला लेते हैं। निस्सन्देह प्रतिभा-शालिनी पुरुषार्थ इस दुनियाँ की चीज़ नहीं थी, इसी लिए देवताओं ने इतना शीघ्र उसे अपने पास बुला लिया।

स्त्रियों में कविता करने का शौक दिन-ब-दिन बढ़ रहा है। आए दिन नई-नई कवियित्रियों का प्रादुर्भाव होता चला जा रहा है। हिन्दी की सभी पत्र-पत्रिकाओं में अब लड़कियों की कविताएँ भी प्रायः प्रकाशित होती रहती हैं। मगर जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि स्त्रियों द्वारा उत्पन्न किया जा-रहा यह कविता-साहित्य किस अंश तक साहित्य को सजाने वाला है, तो इसका उत्तर बहुत आशापूर्ण नहीं मिलता। इस दशा में एक ऐसी बाला कवयित्री का, जिस में कवि के सम्पूर्ण गुण विद्यमान थे, अवसान हो जाना हिन्दी के लिए सचमुच अभाग्य की बात है। पुरुषार्थवती जी की कविताओं को जिस ने भी पढ़ा वह यह कहे बिना न रह सका कि यह कुमारी एक दिन साहित्यिक जगत में उज्ज्वलता के साथ चमकेगी।

काश्मीर की राजधानी श्रीनगर में एक प्रसिद्ध परिवार है, जिसके मुखिया ला० चिरंजीतलालजी हैं। प्रतिवर्ष हज़ारों यात्री काश्मीर की सैर करने के लिए जाते हैं, इनमें से जिन

लोगों को काश्मीर के सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक जीवन को समझने की ज़रा भी परवा होती है, वे लाला चिरंजीतलालजी के संसर्ग में आए विना नहीं रह सकते। उनका घर एक आदर्श-घर है, जो हमेशा एक सदावर्त बना रहता है। कितने ही अतिथि आ जायँ, वहाँ सबके लिये स्थान है। श्रीनगर की आर्य-समाज मुख्यतया इसी परिवार के दान पर चल रही है। शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में इस परिवार ने अच्छी उन्नति की है। लाला चिरंजीतलालजी पंजाब के भेरा नामक क़स्बे के रहने वाले हैं। युवावस्था में वह काश्मीर आए थे। जब वह पहलेपहल वहाँ गए थे, तब उनकी आर्थिक दशा बहुत मामूली थी। अपने धैर्य, साहस और प्रयत्न के बल पर आज वह काश्मीर के प्रमुख व्यापारियों और नागरिकों में एक हैं। श्रीमती पुरुषार्थवती इन्हीं ला० चिरंजीतलालजी तृतीय कन्या थीं।

लाला चिरंजीतलालजी ने अपनी सन्तानों का पालन जिस उत्तमता से किया, उसका परिणाम यह हुआ है कि उनकी सभी सन्तानों के विचार, स्वभाव और चरित्र बहुत उन्नत, आकर्षक और पवित्र हैं। उनकी बड़ी कन्या श्रीमती सत्यवती एक आदर्श महिला हैं। उनका हृदय स्नेह और उदारता से लबालब भरा हुआ है। वह दिल्ली में रहती हैं और वहां के सार्वजनिक जीवन में पर्याप्त भाग लेती हैं। सत्यवतीजी की छोटी बहिन श्रीमती ऊर्मिला देवी हैं। ऊर्मिला देवी जी ने

मेरठ से सत्याग्रह संग्राम में जो प्रमुख भाग लिया था, उसके कारण उनका नाम प्रांत भर में सुप्रसिद्ध है। मेरठ ज़िले में उन की अत्यधिक प्रतिष्ठा है। इस संग्रह की लेखिका पुरुषार्थवती जी का जन्म १० अक्तूबर १९११ को वज़ीराबाद में हुआ था। उन दिनों उनके पिता वहां पंजाब नैशनल बैंक के ब्रान्च मैनेजर थे।

पुरुषार्थ के जन्म के बाद ला० चिरंजीतलालजी काश्मीर की रियासत में ठेकेदारी का काम करने लगे और धीरे-धीरे वह अधिक-अधिक समृद्ध होते चले गए। उनकी सफलता का रहस्य था—ईमानदारी और कठोर परिश्रम। अपनी युवावस्था के दिनों में वह साइकल पर एक-एक दिन में साठ-साठ मील का चक्कर लगाते रहे हैं।

कुमारी पुरुषार्थवती को उन्हों ने संस्कृत और हिन्दी की उच्च शिक्षा दिलाई। अपनी सोलह बरस की उम्र तक वह इस योग्यता की होगई कि विशुद्ध संस्कृत में निबन्ध लिखने लगी और हिन्दी के पद्यों का छन्द-ज्ञान भी उन्हें अच्छी तरह हो गया। उनके पिता जी ने उन्हें हिन्दी और संस्कृत पढ़ाने के लिए तो मास्टर नियुक्त किए हुए थे, परन्तु अंग्रेज़ी पढ़ाने का प्रबन्ध नहीं किया था। सत्रह बरस की उम्र में कुमारी पुरुषार्थ-वती ने अपने भाई जयदेवजी की देखादेखी, उन्हीं की मदद से स्वयं ही अंग्रेज़ी का अभ्यास भी शुरू कर दिया और एक ही बरस में वह पर्याप्त अंग्रेज़ी सीख गईं।

अपनी इस अक्षर-शिक्षा के अतिरिक्त उन्होंने प्रकृतिदेवी की गोद में बैठकर वह अनुपम शिक्षा प्राप्त की थी, जिसे पाना किसी विरले के लिये ही संभव है। काश्मीर की ऊँची-ऊँची हिमाच्छादित घाटियों, डल झील पर नाचते हुए कमलों और चिनार के विशाल वृक्षों ने उन्हें वह अमुपम पाठ पढ़ाया था, जो किसी स्कूल में नहीं पढ़ा जा सकता। वह काश्मीर की घाटी के रंग-बिरंगी फूलों में पली थीं। केसर की मदमाती सुगंधवाली क्यारियों में उनका शैशव व्यतीत हुआ था। काश्मीर का संपूर्ण वातावरण ही काव्यमय है। कविता के उस अनंत सोते में उन्हों ने मन-भर काव्यामृत पान किया था।

कुमारी पुरुषार्थवती में कवित्व की प्रतिभा बचपन ही से थी। किसी नई चीज़ को देख कर वह जो रिमार्क करती थीं, वे रिमार्क उनकी सूझ और प्रतिभा को प्रकट करने वाले होते थे। काश्मीर के कवितामय वातावरण में उनकी यह जन्म-सिद्ध प्रतिभा बहुत शीघ्र फलने-फूलने लगी। परिणाम यह हुआ कि सुदूर काश्मीर का यह पंजाबी परिवार स्वयं ही एक ऐसा साहित्यिक परिवार बन गया, जिस की भाषा हिन्दी थी। पुरुषार्थ की देखादेखी उनकी अन्य बहिनों और सखियों को भी साहित्य की तरफ़ रुचि पैदा होगई।

जो लोग इस प्रतिभाशालिनी कुमारी से परिचित थे, उन्हें इस समाचार से बड़ा सन्तोष और हर्ष हुआ था कि उनका विवाह भी एक उदीयमान और सुरुचिसम्पन्न साहित्यिक

से हुआ है। उन्हें विश्वास है था कि यह बाला कवयित्री अब शीघ्र ही अपनी असाधारण प्रतिभा से हिन्दी जगत को सुरभित करने लगेगी। पर शोक ! विधाता को यह मंजूर न था। पुरुषार्थ अपनी अपूर्व प्रतिभा को लेकर महाप्रस्थान कर गई। हिन्दी का यह सचमुच दुर्भाग्य है कि उस होनहार कली को विधाता ने इतना शीघ्र तोड़ लिया।

२३ जुलाई
गुरुकुल विश्व विद्यालय
हरिद्वार

—सुशीला देवी
(शास्त्रिणी तथा अण्डर-ग्रेजूएट)

सूची

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

महानाविक के प्रति

उठती हैं चञ्चल अतीत-
स्मृतियां रह-रह कर मन में,
हंसना या रोना न सुनेगा
कोई निर्जन वन में !

(लक्ष्यहीन राही)

महानाविक के प्रति

अब तो केवल आशा तेरी।

टूटी-फूटी नौका स्वामी ! पड़ी भवँर में मेरी

उमड़, घुमड़ कर बादर गरजें, आँधी चले घनेरी।

उठें भयङ्कर, चपल तरङ्गें, ऊपर निशा अँधेरी

सूझे आर-न-पार, चहूँ दिशि डोलत नैय्या मेरी।

हा ! तिस पर मतवाला नाविक, मैं चिन्ताओं घेरी

विह्वल होकर नाथ पुकारूँ—क्यों की अब लग देरी ?

अब तो केवल आशा तेरी।

अलोक दर्शन

इन कानों से सुने हुए हैं
कितने मन-मोहक संगीत,
पर अगणित-ध्वनियों से तेरा
गूँज रहा है राग पुनीत।

फैल रही उन्मुक्त-गगन में
इस प्रकाश की रेखायें,
बाँध न सकती हैं असीम को
विस्तृत जग की सीमायें।

अमित-रश्मियों से क्षिति पर जब
यह 'आभा' विलसित होगी,
अखिल विश्व की नीरवता इस-
जगमग से प्लावित होगी।

दर्शन लालसा

नाथ ! पड़ा सूना मन-मन्दिर
कब उस को अपनाओगे ?
नेत्र थक गये राह देखते १
कब तुम फिर से आओगे ?

हूँ पगली मतवाली या मैं
फिर भी हूँ चरणों की दास,
२ प्रेम-तरंग हिलोरें लेती
आओ, एक बार फिर पास ।

मानस सर के हँस तुम्हीं हो
—हो मेरी तन्त्री के तार,
मेरी जीवन नैय्या के हो ३
कर्णधार, पकड़ो पतवार ।

देकर झूठे धैर्य्य नाथ ! अब,
नहीं मुझे ठग पाओगे;
४ देर करोगे तो क्या होगा—
शून्य कुटी को पाओगे ।

तेरे आने पर

नये भाव से, नये चाव से
इन फूलों की डाली-डाली,
प्रमुदित हो स्वागत में तेरे
अपने निश्चल-नयन खोल कर

पलकों में हरियाली भर कर
विरही-वदन उमङ्गों से भर
पूर्व दिशा में दृष्टि जमाये
छिप-छिप कर फिर पंखुड़ियों में

लिपट-लिपट कर किसलय-कर में
मुग्ध समीरण की अलकों में
थिरक-थिरक उठती घड़ियों में
सरसित हो कर ओस बिन्दु से

मधु-मद से प्याला छलका कर
चञ्चलता में नवयौवन की ।
उच्छ्वासों में राग छिपा कर
नीरव-नभ की झिल-मिल करती—

तारावलियों में मुरझा कर
बिखरा कर मादकता अपनी,
व्यथित-हृदय से, मोहक मन से
आश्वासन पाकर मधुकर से,
विह्वल हो "तेरे आने पर" ।

श्रीमती पुरुषार्थवती

(लाहौर—१९११ से १९३० तक)

लक्ष्यहीन राही

सांझ हुई सब लौट चले हैं
पक्षी-गण मतवाले,
अरुण-दीप्त पश्चिम ने मद के
छलका डाले प्याले ।

बिखर चुकी हैं पूर्व-प्रान्त में
आशाओं की लड़ियां,
किन्तु निहित हैं मुग्ध उसी में
वे सोने-सी घड़ियां ।

विलय-प्राय होगये व्यक्त भी
इस निस्तब्ध निशा में
एक तुम्हीं पर चले जारहे
उस अस्पष्ट दिशा में ।

उठती हैं चञ्चल अतीत-
स्मृतियाँ रह-रह कर मन में,
हँसना या रोना न सुनेगा
कोई निर्जन-वन में ।

उस अदृष्ट की आशा में
कितनी रातें बीती हैं,
इच्छा और प्रतीक्षा, मिट कर-
भी हारी जीती हैं ।

बुझा न सकतीं अश्रु-कणों से
लिपट-लिपट कर आहें,
धधक रही हैं सीमा पर वे—
'निष्ठुर दीन' चितायें ।

व्याकुल-पीड़ा कांप-कांप कर
सहम रही है अपने में,
भुला सकेगी भटक-भटक कर
निर्मम-ममता सपने में ।

राही ! छोड़ सकोगे कैसे ?
आखिर फिर भी चलना,
कठिन लौटना है उतना ही—
जितना आगे बढ़ना ।

वेदना

हो सुन्दर, सुरभित उपवन
जग को करता हो मोहित
पर बना रहे यह पतझड़
मुझ को वसन्तसम शोभित।

सज्जित गृह द्वार खड़े हों
करते तों नभ का चुम्बन।
अपनी सूनी कुटिया में
बस रमा रहे मेरा मन।

मधु वन में खेलें करता
बहता हो सुखद समीरण,
पर मेरी तप्त उसासें
रखती हों अमृत के कण।

विशदाङ्गण में पृथवी के
सब क्रीड़ा करते जावें
पर मेरा स्थान कहां है—
यह कोई जान न पावे।

उपमेय न कोई भी हो
उपमान न कोई मेरा
मैं भी कुछ पता न पाऊँ
—होगा किस ओर बसेरा !!

पाहुने को भेंट

सिमटते ही सूना उल्लास
हृदय में तड़प उठा विश्वास,
अतिथि ! क्या दे सकती हूँ भेंट ?
—यही "प्रेमाश्रु-भरे" निश्वास !

लेखनी

प्रेम-पत्रिकाओं में चञ्चल
खेल चुका है यह मन ।
फिर-फिर भर कर उजड़ चुका है
इन में मेरा यौवन ।

शीश कटाने पर भी, हिय का—
बोझ न टलने पाया,
लुट जाने पर मर्म-व्यथा का
राग यहीं पर गाया ।

इसी वेदना की मसि में ही
निज तन मन खोलूँगी,
किन्तु किसी के व्यथित हृदय में
प्रेम-राग भर दूँगी ।

विदाई का उपहार

अचिर-सञ्चित, नेही-से मृदुल
वही जो थे श्रद्धा के फूल,
उन्हीं का मादक सौरभ-सार
बना है हृद्गत धीमा—शूल।

मचलती और छलकती चाह
हृदय की पीर बनी—बेपीर,
सुखद, सोने-सा शुभ्र अतीत
झलककर करता अधिक अधीर।

शून्य से लिपट रही है आश, बिखरता जाता है विश्वास,
पथिक ! क्या ले जाओगे सङ्ग—यही 'दो' अश्रु-भरे 'निश्वास' !

प्रेमिका की आकाँक्षा

दुर्गम-पथ चल कर आई हूँ
होने को चरणों में लीन,
घोर निराशा-तम में अब तक
थी आशा की आभा क्षीण।

हृदय-सदन में जगह न दो तुम
मत दो चरण-कमल का प्यार,
नेत्र-बिन्दु से ही चलने दो
बातों का यह प्रिय व्यापार।

और नहीं कुछ, बस केवल यह
करुण-कथा ही कहने दो,
उस के बाद अकेले मुझ को
क्लेश-सिन्धु में बहने दो।

जीवन-नौका

पथ अज्ञात, कठिन, जीवन-
नौका डगमग हो जाती थी,
विश्व सरित की चपल तरंगों-
में, डूबी उतराती थी ।

कभी निराशा की छाया निज-
अञ्चल से ढक लेती थी,
अश्रु-माल इस दग्ध-हृदय का
क्लेश-ताप हर लेती थी ।

दुखिया की इस दीन दशा पर
चन्द्र देव मुसकाते थे,
नभ-मण्डल में मौन सुधाकर
बार-बार बलि जाते थे।

तब भी इस मुर्झाये मन में
आश-लहर लहराती थी,
भावों की मञ्जुल-आभा, बस
क्षीण प्रकाश दिखाती थी।

अनिल-झकोरों से तम में वह
झिल-मिल ज्योति विलीन हुई,
मेरी जीवन-नैय्या भी उस
अन्तराल में लीन हुई।

विफल प्रतीक्षा

सोचा, वे आवें गे—क्या हो
बिठलाने का साज ?
टूटी-सी कुटिया में हा ! मिल-
सका न कुछ भी आज।
हुई निराशा—सँभल गई फिर,
दुखिया बने न दीन।
अस्तु, हृदय-मन्दिर में ही वे,
हो लेंगे आसीन।

चिन्ता हुई तभी मन में, क्या-
दूँ उन को उपहार ?
ढुलक पड़े दो आँसू नयनों-
से, अन्तिम-आधार ।
पुलकित हो सोचा—इससे बढ़
क्या है जीवन सार ?
यही अश्रु की दो बूँदें, दूँ गी
चरणों पर वार ।

बीती साँझ, निशा भी बीती
आया सुन्दर-प्रात,
समझ रही थी मैं—यह ही है
मेरा पुण्य प्रभात ।
किन्तु कहाँ उल्लास, कहाँ विश्वास,
कहाँ था मान,
आशा की निराश-घड़ियाँ थीं
नहीं आये भगवान् ।

बंशी की तान

किसी दुःख से आर्द्र गगन है
छिद्र उसी वंशी के तारे—
व्याकुल होकर वहीं मगन हैं !

(वंशी की तान)

वंशी की तान

बजी चहुँ दिशि, जान सके नहिं कोई,—सब अनजान,
बांसुरी की सुमधुर सुर-तान।
दक्षिण-मलय बहे, कोई कह दे, उत्तर की आन
उदयाचल समझे कोई, वह मन-मोहन-सी तान।
कौन छेड़ता है क्षण-क्षण में?
मुखरित कर देता है, भर कर,
सरस-स्वरों की लहर पवन में,
आवाहन करता है जग को वह चुप-चाप—महान।
किसी दुःख से आर्द्र गगन है,
छिद्र उसी वंशी के तारे—
व्याकुल होकर वहीं मगन हैं।

रोदन है, हंसी है या—तम का अधीर आह्वान ।
गरज उठे लय की लय में वह अज्ञानावृत ज्ञान ।
वृक्ष, लताओं, कुसम-कुञ्ज से,
गिरिगह्वर से द्विगुणित होकर,
बहने लगे शब्द-पुञ्ज से,
जल, थल, नभ से गूँज उठे मानो मृदु-मनहर तान ।
अन्ततः सुमन-मन से संचित,
भर कर राग-सुफल-फल अंचित
प्रकृति के प्राणों से रंजित
कांप उठे, जिन अधरों पर खेली थी मृदु-मुस्कान ।
जाना नहीं किसी ने फिर भी
छिड़ी तान अव्यक्त, किसी क्षण
थिरक उठी स्वर-लहरी, स्थिर भी
वह महान जादू-सा कम्पन, जिसकी थी पहिचान,
बीच-बीच में होते हैं, प्रतिध्वनित मनोहर गान ।
अजब वंशी की अद्भुत तान ।

श्मशान का दीपक

बिखरी आभा
को दरसाते
लुक-लुक छिप-छिप
कर रह जाते,
चन्द्रदेव तो
रूठ चुके थे,
शुभ्र कणों से
तारे थे नभ-
पर, पृथवी पर
अँधियाली की
काली छाया।

सघन वृक्ष श्रेणी-
में नीरव
दरिद्रता की
जीवित प्रतिमा,
जड़ जंगम की
स्नेह-स्निग्ध-सी
सहानुभूति से-

वंचित रह कर
मुझ अबोध की
तरह टिमटिमा-
रहा, उस जगह।

परिचयहीन करों-
से निर्मित
स्निग्ध बत्तियां
अपने तन को
जला रही थीं।
सतत साधना-
से रोता था
उस अतीत की
विह्वल-स्मृति में,
दुखियों की-सी
करुण कथायें
गा-गा कर मिट्टी-
में मिल कर
जीवन पाकर
बुझता, जगता
व्याकुल दीपक।

×

अरे जल रहे
क्यों, रह-रह कर!
इन नयनों से
तड़प-तड़प कर
बरस रहे क्यों
प्यासे आंसू?
सनसना रही
वायु के पंखों-
से, पागल इन
झोकों से ही
बुझ न जाय तू!

कहा—'नहीं सन्देह,
—प्रलय की
इसी चिता पर
तन को खो कर
किसी भूत की
काया में मिल
लीन करूँगा
यह प्रिय जीवन'।'

×

'हाय, यहीं पर
अकथ कहानी
का वह नायक
बरसों से है
पड़ा सो रहा,
–जिसकी मृदु स्मृति-
में जलता हूँ,
मैं तिल-तिल कर।

आंसू छलक रहे
—आंखों में,
पुत्तलियां निश्चल
—सहमी-सी
नाच उठेंगी,
यह आशा है।
इन्हीं उमंगों-
में कटता है
एक-एक पल।
रहने दो नीरवता-
की लपटों में
बाधा न हो कहीं
अब........!'

अन्तर्वेदना

कुमारी पुरुषार्थवती

(काश्मीर—१९११ से १९३० तक)

रहस्यमय प्रश्न

सान्ध्य-गगन की ललित-लालिमा
विहग-वृन्द का कलरव-गान,
शीत, मन्द, शुचि, मलय-प्रभञ्जन
किस की अहो दिलाते याद ? १

बाल-सूर्य की किरण-राशियां,
उषा सुन्दरी का नट-वेष
चपल-सरित की अविरत कलरव
देते क्या अतीत—सन्देश ? २

३

निशाकाल का नीरव-गायन
सुप्त-विश्व की मुद्रा—मौन,
चन्द्रदेव की मृदुल-रश्मियां
क्या कह देती हैं——मैं मौन ?

४

व्यथित हृदय-तन्त्री झङ्कृत कर
—कौन अहो गाता है गान,
किस अतीत की याद दिला कर
बेसुध कर देता, अनजान ?

आँसू

छिप-छिप कर इतने तारों में जो क्षिति पर उतरे हैं
कौन जान सकता है इनमें कितने भाव भरे हैं ।

मुग्ध, माल में गुँथे जा चुके
डूब चुके या पार पा चुके,

एक सूत्र में ग्रन्थित हो फिर भी तितरे-बितरे हैं
कौन जान सकता है इनमें कितने भाव भरे हैं ।

छलक-छलक बातें करते हैं
ढुलक-ढुलक कर चित हरते हैं,

सरस, सुशीतल हैं पर, उच्छ्वासानल-ताप जरे हैं,
कौन जान सकता है इनमें कितने भाव भरे हैं।

लुढ़क कपोलों पर जब आते
लूट-लूट धन दिल बहलाते,

विरला कोई बूझे—कैसे खोटे और खरे हैं,
कौन जान सकता है इनमें कितने भाव भरे हैं।

सप्त-स्वर

प्रकृति-नटी सातों रंगों से
करती है नित नव-शृङ्गार,
सात स्वरों से यह जग-वीणा
करती है मुदमय झङ्कार ।

सूर्य रूप में सात वर्ण ये,
करते जग-जीवन-संचार,
सात वर्ण की अभिव्यक्ति में
भूल रहा सारा संसार ।

× × ×

इसी सप्त स्वर-लहरी में, मुझ-
को निमग्न हो जाने दो,
विश्व-चित्र के चतुर चितेरे
प्रेम-सुधा-रस पीने दो ।

डाली

मत छूना इन को माली !

कलियों से पूछा जाकर
भ्रमरों ने आँख मिला कर,
चहती हो यौवन कितना ?
"कह देंगी सब–मुरझाकर।"
तब छलक पड़ेगी प्याली
—यह बोली डाली-डाली।

उन्मत्त पवन फैला,—कर
थोड़ी-सी पत्ती लेकर
गूँथे, नन्ही-सी लड़ियां—
बदले में सर्वस देकर
"मत समझो भोली-भाली"
–झट बोल उठी हर डाली।

मधुकर की गुञ्जारों में
—वीणा-सी झङ्कारों में,
रह-रह कर फिर बज उठतीं—
नव यौवन की तारों में।
"हा! उजड़ रही हरियाली"
—कम्पित हो कहती डाली।

पँखड़ियाँ हिला-हिला कर
गरदन को करके ऊपर
सौरभ से पलकें नीचीं-
कर, अपनी तानों से भर।
फूलों, मतवाली—खाली
—चुपके-से डाली-डाली।

"उजियाली में अन्धेरा
सन्ध्या में मुग्ध सवेरा,
मत छेड़ो, लेगा कोई—
इनमें भी आन बसेरा।"
श्यामल से पत्तों वाली
तब बोली डाली-डाली।

पतझड़

इन पंखों में तड़प उठा है
यह मेरा मृदु-हास,
खिल कर भी इस में पाया है
भीना-भीना हास ।

बाल-सुलभ-चञ्चलता खेली
—पँखड़ियों पर प्यार
कितने ही वसन्त मुर्झाये
यह विधु-वदन निहार।

नव यौवन का मद मतवाला
फिर-फिर बजते तार
इस तन पर निसार होता था
अलि का जीवन सार।

वह परिहास-हास, जिसमें था-
पाया पूर्ण विकास,
समझ न सकती थी मैं इसमें-
भी है क्षीण-विनाश ।

ऊंची डाली पर देखा था
यह विस्तृत संसार
अब क्षितिके उजड़े दिल में है
खोजा इसका क्षार ।

खुले हुए थे जग भर के हिय
मैं थी उनका हार,
किन्तु, शेष हैं अब तो केवल
पौरुष, पाद-प्रहार ।

आह ! याद करके क्या होगा
अपना गत सङ्गीत,
भूल जायँ विस्मृतियों में ही
मेरे राग-पुनीत ।

सुनी अनसुनी करदो, मेरी
नीरस-करुण-पुकार,
जाती हूँ वेदना भरे मन-
से, अनन्त के द्वार !

निर्वाण

लहराती-सी अधरों पर,
मीठी-मीठी मुसकान ।
न सो जाने में जिसका अन्त,
न खो जाने से जो निःसार ।
सहसा ही उल्लास-भरे दृग-युग में-
जिसकी तान,
अलसाती पलकों में तड़प रहा-सा
हरषाया प्राण
—बिखर जाता उसका अवसान ।

मुसकाती-सी नाच उठी है
वीणा कर झङ्कार,
सदा छिप कर भी होता व्यक्त
मन्त्र में ही मोहक व्यापार।
विकल-साधना सिहर-सिहर रो उठती
सर्वस हार।
हृदय धधक वेदना-वह्नि में
करता हाहाकार

—किन्तु खोया 'निष्ठुर' निर्वाण।

प्रकृति-संगीत

हृदय करता है हाहाकार
किन्तु मुख रहता है अम्लान
प्रेम पथ करते हो निष्कण्ट
थाम कर आंखों का तूफ़ान !

(निर्झर)

दलित कलिका

मुझे देख कर खड़े हँस रहे
विकसित सुन्दर फूल,
करते हो परिहास-हास, तरु-
शाखाओं पर झूल ।

हाव-भाव से अपने जग को
देते सरस सुवास,
मुझे देख गर्वित हो करते
किन्तु, व्यंग उपहास !!

यदपि धूलि-धूसरित बनी मैं
—हूँ सौन्दर्य-विहीन,
भूमि-शायिनी, पदाक्रन्त हो
हुई कान्ति द्युति हीन।

किन्तु एक दिन मैं भी करती-
थी———मधुमास-विहार,
लता-अंक में झूम-झूम कर
लेती मौज बहार ।

नव जीवन का उषः काल था
कुसुमित यौवन-उपवन
रस लोलुप मधुकर दल करता
था सहर्ष आलिंगन ।

विशद नील नभ से करती थी
चन्द्र—सुधा—रस—पान
मन्द अनिल से आन्दोलित हो
गाती——नीरव गान ।

गर्व, दर्प सब खर्व हुआ अब,
गिरी, हुई हत-मान,
करुणा-क्रन्दन है केवल अब
होने तक अवसान ।

हो गर्वित, उन्मत्त विटप पर
झूम रहे हो फूल !
मुझे देख फूले हो, जाना-
—निज अस्तित्व न भूल !!

सरिता के प्रति

सजनि ! कहां से बही आरही,
चली किधर किस ओर ?
किस के लिये मची है हिय में,
यह व्याकुलता घोर ?

अगणित हृदयों में छेड़ी है
मूक-व्यथा——अनजान,
कितने ही सूनेपन का, कर
डाला है अवसान ।

सरिता के प्रति

बिछा प्रकृति का अञ्चल सुन्दर
तेरा स्वागत सार,
चूम-चूम कर वृक्ष झूमते,
ले-ले निज उपहार ।

सतत तुम्हारे मन-रञ्जन को
विहग करें कल्लोल,
तुझे हँसाने को ही निश दिन
बोलें मीठे बोल ।

बुझते जाते धीरे-धीरे
नक्षत्रों के दीपक
स्नेहशून्य होकर के मानो
दिखलाते-से हैं पथ ।

नीरव-कुञ्ज हुए, मुखरित सुन-
तव निनाद——गम्भीर
मतवाले प्यासे पी तुझ को
होते अधिक अधीर ।

कितने निर्झर दिखा चुके हैं
तुझको निज हिय-चीर,
किन्तु न भरता उनसे तेरा
शोक उदधि गम्भीर

किसके हित सकरुण विहाग सम-
अविश्रान्त यह रोदन ?
नीरस प्रान्तों में बखेरती,
क्यों अपना भीगा—मन ?

क्या आगे बढ़ कर पाओगी,
अपने चिर-आराध्य ??
चलो, चलें, तब मिल कर सजनी !
मिटे हृदय की साध ।

मेघमाला

छाई है घोर-घटा घन की ।
बादल काले मदमाते हैं
यह उमड़-घुमड़ कर आते हैं
स्मृतियां बटोर कर लाते हैं
चित में इक कसक उठाते हैं
फूटी अभिलाषायें कल-की,
छाई है घोर-घटा घन की ।

अतृप्त स्वरों से नाद करें
रह-रह दिल में उन्माद भरें
ना हर्ष बहे, न विषाद सहें
उत्थान कहें—विनिपात कहें !!
—परिभाषायें जन-जन की,
छाई है घोर-घटा घन की ।

पल-पल में हृदय-समुद्र भरें
पागल आँखों में बरस रहें
विक्षिप्त करों से विचलित हो,
चुँधिया उठतीं गीली पलकें ।
सुध-बुध खो दी अपने तन की,
छाई है घोर-घटा घन की ।

अगणित-धाराओं में बहते
नभ की वियोग-ज्वाला सहते
धरणी के अञ्चल पर लौटें
—भूखे प्यासे कुछ ना कहते ।
जाने पर, कौन व्यथा मन की,
छाई हैं घोर-घटा घन की ।

दामिनी

चारु चन्द्र के मृदु विकास-सी
उषा-सती के प्रथम हास-सी
कवि के रुचिर कृत्य-सी शोभित
ओस बिन्दुओं के विलास-सी।

मन्द मलय मद-युत समीर-सी
विरही-जन की हृदय-पीर-सी
राग-रागिनी लय में 'सम'-सी
धीरा होकर भी अधीर-सी।

कुसुमों में रसमय पराग-सी,
अलि अवली के करुण-राग-सी
चञ्चल, चपल, किन्तु गम्भीरा,
विडम्बना-पूरित सुभाग्य-सी।

निर्भर

सदा दृग जल से रोता विश्व
हृदय तुम देते अपना चीर,
कहाँ पाओगे प्रेम-अनन्त
बहा कर अपना मानस-नीर?

खींच कर स्वर-लहरी के बीच
वेदना के सूने उद्गार,
निरन्तर देते हो सन्देश
नहीं पाते हो फिर भी पार।

निर्झर

हृदय करता है हाहाकार
किन्तु रहता है मुख अम्लान
प्रेम-पथ करते हो निष्कपट
थाम कर आंखों का तूफ़ान।

व्यथित मानस-पल्वल के बीच
जभी झिल-मिल करती है चाह,
खींच कर उच्छ्‌वासों की आड़
रोक लेते थे धीमी आह।

साधना में प्राणों को छोड़
कभी पाओगे स्नेह-अनन्य
मौन जब निकलेगा सङ्गीत,
मुग्ध वे घड़ियां होंगी धन्य।

मीठा जल बरसाने वाले

नील वर्ण की चादर डाले
उमड़-घुमड़ कर आने वाले
नगर, गांव, गिरि-गह्वर, कानन
निज सन्देश सुनाने वाले ।

तूने देखा सभी ज़माना
पहला गौरव भी था जाना
वर्तमान तूने पहचाना
लुटा चुके हम सभी ख़ज़ाना ।

दिन खोटे आये जब अपने
सुखद दिनों के लेते सपने,
साहस बल सब कुछ खोकर हम
स्वार्थ-माल ले बैठे जपने।

ऐसा अमृत-जल बरसा दे
तप्त दिलों की प्यास बुझादे,
वीरों का सन्देश सुना दे
हम को निज कर्तव्य सुझा दे।

हे स्वच्छन्द विचरने वाले,
हे स्वातन्त्र्य-सुधा-रस वाले!
हम को भी स्वाधीन बना दे,
मीठा जल बरसाने वाले !!

बिखरती गूँज

सुनेगी रह-रह कर वह तान
सदा लय होंगे राग पुनीत,
बिखरने पर भी जिन का प्राण
तड़पता ही रहता संगीत ।

सुनहली-आभा बलि-बलि हो-
जाती, छेड़े गान समस्त,
करेंगे आलिङ्गन इक बार
होंगे फिर वे अस्त-व्यस्त ।

मेरे उच्छ्वास

सुनी अनसुनी कर दो मेरी
नीरस करुण पुकार,
जाती हूँ वेदना भरे मन-
से अनन्त के द्वार !

(पतझड़)

प्रतीक्षा

ओह ! विदा माँगने आई
—यह क्षीण हुई उजियाली,
मैं व्यस्त हो उठी अब तो
लख कर पश्चिम की लाली।

आशा की लहरें ठग कर
यह सूना-सा अन्धेरा,
रो उठतीं दूर क्षितिज पर
रुकता-सा हुआ बसेरा ।

हम नहीं मानते फिर भी
इस नैराश्य को, आख़िर—
जा-जाकर फिर आ रुकते
उस पार वहीं हो कर स्थिर।

कैसे सुलझाऊँ मन को ?
निष्प्राण नेत्र हैं चाहें
उलझाती ही जाती हैं,
यह भीगी-भीगी आहें ।

इस पीड़ा में भी क्रीड़ा-
कौतुक की अद्भुत खेलें,
अब नहीं सँभाले जाते
उद्देश्य विहीन झमेले ।

कब से बैठी करती हूँ
प्राणों से सजल प्रतीक्षा ।
ना—लो ! बस दे न सकूँगी
निर्मम ! अब अधिक परीक्षा।

तड़प

—निकली जो घर से ।

वीणा-वीणा बज न सकेगी फिर मीठे-स्वर से,

क्या कहते हो, बिखर जायगी ?

तड़प उठेगी—सँभल पायगी ।

रूठ जाओगे—यही मनायगी, आँसू भर के,

—निकली जो घर से ।

रहने दो—कुछ सार नहीं है,

बहने दो—पतवार नहीं है ।

पकड़े कौन ? उन्हें जो स्थिर भी हैं, कम्पित-कर-से ।

—निकली जो घर से ।

स्मृति

निराशा के अञ्चल को छोड़
मूक करके मानस-सन्ताप,
झुकाते फिर-फिर किस की ओर
चित्त के व्यग्र-भाव चुप-चाप ?

खींच कर स्वर-लहरी के बीच
हृदय-तन्त्री के झंकृत तार,
दिखाते किस अतीत का चित्र
भुला कर उस अनन्त का सार।

सौख्य का निर्वाणोन्मुख दीप
प्रलय का गा कर अद्भुत राग,
खींचता हृदय-कोर के मध्य
भुलाया-सा अपना उन्माद।

छिपा कर अन्तस्तल के बीच
वेदना के सूने उद्गार,
जीवन की निःशेष घड़ियों में-
भी, फैलाती निज प्रासाद।

मेरे उच्छ्वास

हिलोरें लेता मानस-लोक
बिलखता-सा पाकर उल्लास,
हृदय की नीरवता में व्याप्त
—मचल उठते मेरे उच्छ्वास।

भेद कर उर-अन्तर के बीच
उलझती निर्मोही से आश,
छेड़ कर दुःखभरा संगीत
—उमड़ आते मेरे उच्छ्वास।

भुला देता निज को उन्माद
तड़प जाता बिखरा विश्वास
न लय होने पाता आह्वान
—बिलख उठते मेरे उच्छ्वास।

उलझ कर पलकों से अव्यक्त
लिपट नयनों से पाकर नाश,
मसल जाने पर करुण-विलाप
बखेर जाते मेरे उच्छ्वास।

व्यथित हृद्—धाराओं के साथ
उन्हीं में पाकर पूर्ण विकास,
लुटा चुकने पर निज-सर्वस्व
सँभल पाते मेरे उच्छ्वास।

मर्म-वेदना के आधार—
न सह सकते उस का उपहास,
वही मुक्ता मणियों के वास
न खो जायें मेरे उच्छ्वास।

हृदय की कसक

यह चिन्ता की ज्वाला।

अंगों को छू-छू कर मेरे
ले आकर स्मृतियों को, तेरे—
व्यथित हृदय की लपटों में, फिर—
देती निशिदिन ताप घनेरे।

किस उन्मुक्त गगन पर चढ़ कर निर्मम परदा डाला ?

यह चिन्ता की ज्वाला।

मेरे आँसू बुझा न सकते,
आस-पास आ-आ कर थकते।
भरे हुए होने पर भी हैं—
सूखे, प्यासे, सदा बिलखते।

किन्तु नहीं कर सकते खाली यह दुःखों का प्याला।
यह चिन्ता की ज्वाला।

जीवन की कम्पित घड़ियों में
सावन भादों की झड़ियों में
बरबस बिखर पड़ेगी आशा—
गूँथी-सी कच्ची लड़ियों में !!

क्यों कर सुलझा सकूँ, आज यह अपनी उलझी माला !!
यह चिन्ता की ज्वाला।

भग्न-हृदय

सुपल्लव की थपकी से मुग्ध
उलझ कर लतिकाओं के संग,
मद्य छलका कर, हो उन्मत्त
कुसुम ! अब मत अलसा जाना।

समीरण की पलकों में भूल
कुसुम का मोहक सौरभ-सार—
खींच कर मधुमय मधुर पराग
आली ! मत अब तू तरसाना !

बुझा, उलझे प्राणों की प्यास
लिये मतवाला सौरभ साथ,
हृदय की सोई चाह समीर!
न उद्वेलित करके जाना ।

नहीं अब वह वीणा, वह तार—,
नहीं उसकी मुदमय झंकार,
वेदना-व्यथित हृदय में शेष,
यही सूखा बस मुसकाना ।

अन्तर्वेदना

थाम कर मूक-गान का सार
प्रभञ्जन को देते सन्देश,
शून्य में उलझे वे निश्वास
बहे जाते थे देश-विदेश ।

हृदय-गत कवि-कृति से सुकुमार
शेष अपने आँसू दो-चार,
उसी के मृदुल-स्पर्श से व्यक्त
कर दिये इन पलकों के द्वार ।

तोड़, स्मृति के भी अन्तिम तार
छेड़ कर मुग्ध-व्यथा का गान
किया था होने को निःसार
शून्य का भी सूना अवसान ।

—चढ़ा तारावलि का निर्माल्य
दीप की तरल-ज्योति, निर्वाण,
फूट कर भी ना—निकला आह !
अनोखा मेरा बन्दी—प्राण ।

हे माँ !

हे ! ललनाओ भारत की !!
भाग्य विधात्री भारत की,
सौख्य प्रदात्री भारत की ।

(भारत रमणी)

हे माँ !

भारत जननी ! ऐसा वर दे—

थपकी देकर, चूम-चूम कर,
रोम-रोम में साहस भर दे।
ज्ञान-दुग्ध निज पिला-पिला कर,
अंग-अंग साँचे में ढल दे।
लोरी देकर स्वाभिमान की,
निज रक्षण-हित तत्पर कर दे।
प्रेम-मयी शिक्षायें दे कर,
रणचण्डी-सा हिय में बल दे।
ढाल—धर्म की सँग में देकर,
नेह वर्म्म से सज्जित कर दे।
दुष्ट-दलन, खल-दमन करें माँ,
—शक्ति-शालिनी ! ऐसा वर दे।

भारत रमणी

हे ! ललनाओ भारत की !!
पुण्य-प्रेम की जागृत-प्रतिमा
धर्म, जाति की गौरव-गरिमा
तुम से बढ़े देश की महिमा,
भाग्य-विधात्री भारत की,
सौख्य-प्रदात्री भारत की।

कौन कह रहा तुम को अबला
तुम तो शत्रु-घातिनी सबला
शक्ति और साहस में प्रबला
वीर प्रसविनी भारत की,
शक्ति-दायिनी भारत की।

सोचो, समझो, गम्भीरा हो,
निज बल पहचानो, धीरा हो
रण-चण्डी होओ—वीरा हो
रिपु दल-हर्त्री भारत की,
उन्नति-कर्त्री भारत की।

मिथ्या भय को दूर भगाओ
दुर्गा-सी फिर से बन जाओ
विजय-वैजयन्ती फहराओ
सुगति-विधायिनि भारत की,
उठो महिलाओ भारत की।

वीर सन्देश

उठो-उठो साहस से वीरो, मत मन में भय खाओ,
वीर वेष से सज्जित हो कर, रण प्राङ्गण में जाओ।
प्रलयंकर संगीत समर की स्वर-लहरी में गाओ,
कर-धृत शुचि करवाल, अलंकृत होकर, फाग मचाओ।
शौर्य तेज से अपने जग में, विजय-ध्वजा फहराओ,
दुर्बल-दिल में साहस भरदो, ताण्डव नृत्य नचाओ
सुप्त विश्व को जागृत कर शुचि वीर सँदेश सुनाओ।

देशभक्ति का राग

छेड़ दो एक बार फिर तान !!

सुन्दर, सुखद, सरस, शुचि, सुमधुर देशभक्ति की तान,
निर्जीवी जीवित हों जिससे, निर्बल हों बलवान।
ऊँच-नीच का भेद मिटा कर होवें सकल समान,
ग्रन्थित होकर एक सूत्र में, समझें निज कल्याण।
यही चाह हो, यही ध्येय हो,—मातृ-भूमि सम्मान,
देश-वेदि पर करदो मिल कर, तन-मन अर्पण प्राण।
कष्ट-क्लेश का भारत के हो जाने पर अवसान

—तभी होगा भारत उत्थान।

प्रताप पञ्चक

मातृ भूमि के पुत्र निराले
हिन्दु जाति के अनुपम वीर,
शुभ प्रसून मेवाड़-विटप के
रण-दुर्मद, विजयी, रणधीर।

सूर्यवंश के तिलक उजागर
राजपूत वीरों की शान,
थे प्रताप खल-यवन विनाशक
देश बन्धुओं के प्रिय-प्रान ।

क्रोधपूर्ण लख मूरति जिन की
यवन काँपते थे भय मान
कोमल आश्वासन से हिन्दू
पा जाते थे जीवन-दान ।

नेत्र ज्वाल रक्ताभ देख कर
शत्रु विकम्पित होते थे,
चण्ड छटा भाले की लख कर
अपना साहस खोते थे ।

जिन के गुणगण अब भी हिन्दू
उत्साहित हो गाते हैं,
उनके चरणों में हम सब भी
श्रद्धा कुसुम चढ़ाते हैं ।